चरित्र निर्माण : किशोरों की विरोधों से निपटने की संस्कृति

अमन मदान

परिवार, समाज, संस्था या जहाँ भी एक से अधिक लोगों का समूह है, वहाँ एक दूसरे के मतों पर कभी-न-कभी टकराव होना या मतों का फ़र्क़ होना स्वाभाविक-सी बात है। और चूँकि यह होंगे ही, इसलिए ये ज़रूरी हो जाता है कि हर इंसान इन टकरावों और संघर्षों से समझदारीपूर्वक निपटना सीखे।

यह लेख संवाद की संस्कृति बनाने की बात करता है और एक शोध कार्य का हवाला देते हुए इसपर अपने विचार प्रस्तुत करता है कि स्वस्थ संवाद करने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए क्या किया जा सकता है। -सं.

एक दूसरे के साथ टकराव होना तो हमारे सामाजिक जीवन में अनिवार्य है। आपस में जितना मर्ज़ी प्यार हो, फिर भी कहीं-न-कहीं मतों और भावनाओं में विरोधाभास तो होता ही है। यह बड़े ही साधारण स्तर पर हो सकता है, जैसे कि शाम को मूँग की दाल खाई जाए या मसूर की, जातीय स्तर पर भी हो सकता है, जैसे कि दाल ही बने या चिकन, या फिर सामाजिक ढाँचे के स्तर पर, जैसे कि उपभोक्तावादी संस्कृति वाला खाना खाया जाए या स्थानीय संस्कृति वाला।

विरोध, संघर्ष और टकराव क्योंकि हर जगह हैं, इसलिए हर इंसान और हर नागरिक के लिए यह सीखना ज़रूरी है कि इनके साथ अच्छी तरह से कैसे निपटा जाए। टकराव अपने-आप में बुरे नहीं हैं। कई समाजशास्त्रियों का मानना है कि बिना टकराव के कोई भी समाज बदल नहीं सकता। उन्हें ज़्यादा अच्छे और विवेकशील तरीक़े से कैसे करते हैं, यह सीखना सभी के लिए लाभकारी है। दुर्भाग्यवश, भारत में इसके बारे में स्कूली शिक्षा में ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। मगर इसे समझना और इसके लिए उचित शिक्षा व्यवस्था बनाना ज़रूरी है।

आज शाम को क्या खाएँ, इसे तय करने के कई तरीक़े होते हैं। हम औरों को विवश कर सकते हैं कि वे हमारी बात मानें। उन्हें कह सकते हैं कि अगर हमारा मन-पसन्दीदा खाना नहीं मिला तो हम ग़ुस्सा हो जाएँगे। रूठ जाना, यह भी एक क़िस्म का विवश करना ही है। और भी कई तरीक़े हैं समस्याओं को हल करने के, जैसे कि उनसे पीछे हट जाना (मैं आज कहीं और खा रहा हूँ), समर्पित हो जाना (जो आप कहेंगे, वही खा लेंगे), इत्यादि। मगर शायद सबसे अच्छा और स्थाई तरीक़ा होता है संवाद करना, जिसमें दोनों पक्ष एक दूसरे को समझने की कोशिश करते हैं और दोनों की मनोभावनाओं का सम्मान करते हुए ऐसी राह ढूँढ़ते हैं जो सबको स्वीकृत हो। इस संवाद के रास्ते में कई अड़चनें भी आती हैं : जब लोगों के बीच में बहुत सामाजिक स्तर और ताक़त का अन्तर हो तो संवाद करना मुश्किल होता है। जब हमारे आसपास सभी लोग मार-पीट और युद्ध की भाषा बोलते हैं तब भी संवाद की बात करना मुश्किल होता है। इस तरीक़े को

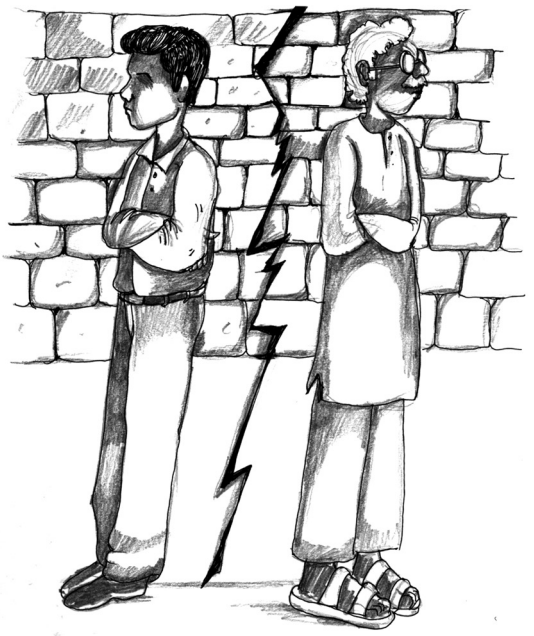

चित्र : हीरा धुर्वे

सीखना पड़ता है, इसकी संस्कृति बनानी पड़ती है और हालात भी अनुकूल बनाने पड़ते हैं। इन सब में मेहनत लगती है। मगर इसके फल सभी को विरोध को हल करने के दूसरे तरीक़ों से ज़्यादा मीठे और सही लगते हैं।

बच्चों, किशोरों और बड़ों को विरोधों के हल ढूँढ़ने के ज़्यादा अच्छे तरीक़े कैसे सिखाएँ? इसपर पहुँचने से पहले यह समझना ज़रूरी है कि हमारे किशोरों के आज की स्थिति में टकरावों के हल ढूँढ़ने के क्या तरीक़े हैं। इस सवाल को लेकर मैंने नवीन कुमार पासवान और नूपुर रस्तोगी के साथ मिलकर एक अध्ययन किया है। नवीन और नूपुर झारखंड आदिवासी बाहुल्य संथाल परगना के पोरईयाहाट ब्लॉक में रहते हैं और उन्होंने कुछ सवालों को लेकर वहाँ के 6 गाँवों में 60 किशोरों का इंटरव्यू किया। इनमें से आधे लड़के थे और आधे लड़कियाँ। दो गाँव आदिवासी बहुल थे, दो ओबीसी बहुल और दो में मिली-जुली आबादी थी। इन किशोरों को तीन स्थानीय परिस्थितियों से जुड़ीं टकराव दर्शाती हुई कहानियाँ सुनाई गईं और पूछा गया कि इनके पात्रों की जगह अगर आप होते तो क्या करते!

किशोरों के टकराव को हल करने के तरीक़े

एक महत्त्वपूर्ण बात जो देखने को मिली, वह थी कि अन्त में प्रेम की ही जीत को सर्वप्रथम स्थान दिया जा रहा था। कई तरह के मसलों और झगड़ों की बातें की गईं। मगर उन सबके बाद यह अपेक्षा थी कि आख़िर में फिर सब ठीक हो जाएगा और आपस में समरसता व प्रेम का रिश्ता वापस बरक़रार हो जाएगा। हमारे लिए यह थोड़ी हैरानी वाली बात थी। जब हम न्याय, समानता, स्वतंत्रता, इत्यादि के बारे में सोचते हैं तो हमारे मन में सच की जीत और झूठ की हार की कल्पना होती है। मगर यहाँ पर अन्तिम उद्देश्य कुछ और था, एक दूसरे के साथ प्रेम भाव और सम्मान में रहना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था। टकराव को हल करने के बहुत सारे तरीक़े विवशता और ज़ोर-ज़बरदस्ती की तरफ़ ज़रूर जा रहे थे। मगर एक हद के बाद बाक़ी समाज से इसे बन्द करने का दबाव आना शुरू हो जाता था। अन्त में उम्मीद यही रहती थी कि सामाजिक बन्धन फिर से क़ायम हो जाएँ, यह नहीं कि सत्य की जीत ही हो।

विवश करना — डाँटकर बात करना

किशोरों का सबसे ज़्यादा प्रयोग में आने वाला तरीक़ा था डाँटकर बात करना। बहुत सारी समस्याओं का हल वे दूसरों को डाँटकर ढूँढ़ते थे। राधा (असली नाम बदल दिए गए हैं) 17 साल की ओबीसी युवती है जो कि ज़िला मुख्यालय डुमका के निजी स्कूल में पढ़ती है। उसे एक कहानी सुनाई गई जिसमें संतोष के चाचा उसे पैसा लौटाने से मना कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या करेगा संतोष अब?

उत्तरदाता : उससे जाके पूछेगा कि हम एक महीना का टाइम दिए थे फिर भी पैसे लौटा के नहीं दिए हो, कब दीजिएगा। उसके बाद वो बोलेगा क्या हम नहीं देंगे, वो करेंगे, उसके बाद बात-बात में ही झगड़ा होगा, फिर आगे बात बढ़ेगी, मारपीट भी हो सकती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कुछ सुलझेगा या नहीं सुलझेगा?

उत्तरदाता : अगर वो लोग सुलझाना चाहेंगे तो सुलझेगा। अगर वो ये कह देंगे कि हम दे देंगे कुछ दिन में पैसे आपको लौटा देंगे तो सुलझ सकता है या अगर नहीं तो फिर बात बढ़ सकती है।

जैसे कि राधा की बात से दिखता है, जब कोई विवाद है तो बात सीधी रखी जाती है और डाँटकर कही जाती है। अगर दूसरा व्यक्ति सीधे ही मान जाता है तब तो ठीक है, और उसे बात का 'सुलझना' कहा जाता है। अगर वह नहीं मानता तो इस तरीक़े को और तीव्र किया जाता है। दूसरे पक्ष की क्या समस्या या क्या सोच है, इसके बारे में बहुत कम किशोरों ने ज़िक्र किया। यह थोड़ी चिन्ता का विषय है क्योंकि संवाद के लिए दूसरों के नज़रिए से भी बात को देखना अनिवार्य है।

विवश करना — समझाना

कई किशोरों ने कहा कि हम समझाएँगे। 'समझाने' का अर्थ यहाँ पर है, स्नेहपूर्ण तरीक़े से दूसरे द्वारा अपनी बात मनवाना। इसमें ख़ुद द्वारा समझने को नहीं जोड़ा जाता। अपनी बात मनवाने के लिए नैतिक तर्क भी दिए जा सकते हैं और भावनाओं को भी झँझोड़ा जा सकता है, रौब भी जमाया जा सकता है और धमकियों व थप्पड़ों का भी प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ के किशोरों के व्यवहार के अनुसार, अगर यह सबकुछ प्रेम भाव से किया जाता है तो वह समझाना ही है। मगर हम इसे फिर भी संवाद नहीं कह सकते, क्योंकि इसमें दूसरे पक्ष को समझने की कोशिश मौजूद नहीं है।

शिवराज 17 वर्षीय ओबीसी लड़का है जिसने स्कूल छोड़ देश के दूसरे हिस्सों में जाकर मज़दूरी करना शुरू कर दिया है। उसे एक कहानी सुनाई गई, जिसमें एक बड़ी बहन अपने छोटे भाई से किसी बात पर नाराज़ है।

प्रश्नकर्ता : तो अब रानी क्या करेगी?

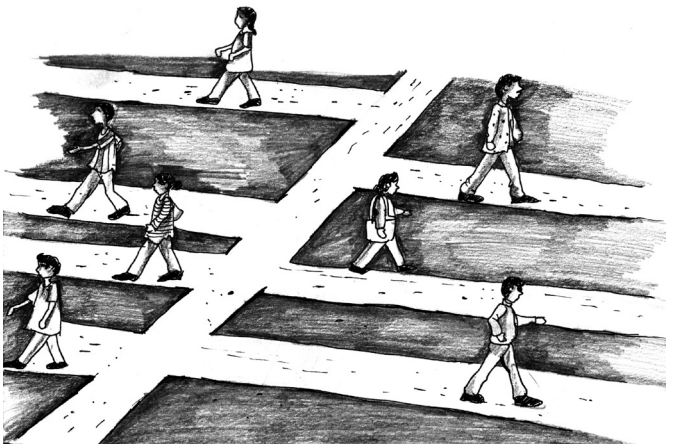

चित्र : हीरा धुर्वे

उत्तरदाता : वही करना चाहिए, एक-दो थप्पड़ लगाके समझा देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : एक-दो थप्पड़ लगाके समझा देगी, ऐसे में तो लड़ाई हो जाएगी दोनों में, है न?

उत्तरदाता : नहीं होगा वो छोटा है न, तो बड़ा मारेगा तो उसके लिए कोई टेंशन नहीं है और उतना रिस्क भी नहीं है।

थप्पड़ लगाकर समझाने में उनको कोई विरोधाभास महसूस नहीं हो रहा था। बड़ों का छोटों के साथ स्नेहशील रिश्ता होता है,

इसीलिए उनके द्वारा की गई हिंसा में उन्हें कुछ ग़लत नहीं दिखता था। यह एक तरीक़े का विवश करना ही है। मगर इसके पीछे स्नेह की भावना है तो इसे वहाँ की समझ में अनुचित नहीं माना जा रहा। यह भी संवाद नहीं है क्योंकि इस सारे स्नेह के बावजूद दूसरों की क्या समस्या या उनका क्या नज़रिया है, इसके बारे में कोई बात नहीं की जा रही।

पीछे हटना और झुकना

यहाँ पर एक आम नैतिक समझ यह है कि बड़ों के विपरीत ज़्यादा नहीं जाना चाहिए। चाचा, बड़ी बहन, इत्यादि के साथ जब टकराव हो और अगर अपने-आप को सही भी माना जा रहा हो, फिर भी आपसी प्रेम और रिश्ता बनाए रखने के लिए पीछे हट जाना चाहिए या उनके सामने झुक जाना चाहिए। इस तरह की बातें लड़कियाँ, लड़कों से ज़्यादा कर रही थीं। पीछे हटने और अपनी हार मानने में इस बात का भी असर है कि स्वयं अपनी ताक़त कितनी है। राधा, जिससे हम पहले भी मिले हैं, कहती है कि वह आगे पढ़ना चाहती है मगर परिवार से उसे इसके लिए सहयोग नहीं मिल रहा। उससे अपेक्षा की जा रही है कि वह अपने बड़े परिवार के लिए खाना बनाने में मदद करे और घर के दूसरे काम करे। राधा से और बातचीत हुई :

प्रश्नकर्ता : जब विवाद होता है, तो आप क्या करते हो उसमें फिर?

उत्तरदाता : ऐसे ही मतलब बातों-बातों में थोड़ा-सा बात होता है ऐसे ही उसके बाद फिर सब सही हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : और सही कैसे होता है फिर?

उत्तरदाता : सही, फिर अपने-आप को समझा देते हैं कि ये सब करने से अच्छा नहीं होता है। क्या फ़ायदा एक ही जगह रहेंगे, एक ही गाँव में रहते हैं, आमने-सामने होता है, अच्छा नहीं लगेगा ऐसे झगड़ा करने से।

प्रश्नकर्ता : और क्या करने से लड़ाई कम हो जाती है?

उत्तरदाता : समझाने से मतलब समझने से। अपने-आप को समझाना पड़ता है उसके बाद अगर ज़्यादा उलझाने से ऐसे ही झगड़ा होता है।

इस लड़की की परिस्थिति है कि उसका परिवार उसपर हावी है। उनके विरुद्ध कुछ भी करने के लिए उसके पास न तो कोई सहयोगी है, न ही साधन। ऐसे में वह अपने-आप को समझा रही है कि पीछे हट जाना और दूसरों की बात मान लेना ही सबसे अच्छा रास्ता है। इस तरह के तर्क भी यहाँ कई किशोरों के मुँह से सुनाई दिए जिनके पास कोई और विकल्प खोजने की ताक़त या समय नहीं था।

तीसरे पक्ष से हल ढुँढ़वाना

यहाँ विवश करने पर इतना ज़ोर है तो फिर समाज में नैतिक व्यवस्था कैसे बनी रहती है? यहाँ सबकुछ ज़ोर-ज़बरदस्ती से क्यों नहीं होता? इस सवाल का जवाब यहाँ की प्रथा में है कि जब भी बात बढ़ती है, किसी तीसरे पक्ष को बीच-बचाव में लाया जाता है। चाहे स्कूल के झगड़े हों या रिश्तेदारों के, बार-बार यह किशोर कह रहे थे कि वे किसी और के पास

चित्र : हीरा धुर्वे

जाएँगे जिससे कि झगड़े को रोका जा सकता है और उचित हल ढूँढ़ा जा सकता है। वे उनके माता-पिता हो सकते हैं, पड़ोसी, या शिक्षक इत्यादि भी हो सकते हैं। अपने समाज के दूसरे लोगों से अनुमोदन लेना यहाँ पर बहुत महत्त्व रखता है। अगर बहुत सारे लोग कह रहे हैं कि यह ग़लत है, तो उसका व्यक्ति पर भारी प्रभाव पड़ता है। नैतिकता का भावनात्मक आधार यहाँ पर है, बाक़ी समाज में स्वीकृत होना।

यहाँ पर 'बैठक' या 'पंचायत' बुलाने की प्रथा है। इसमें रिश्तेदार या पड़ोसी इकट्ठा होकर समस्या पर चर्चा करते और हल बताते हैं। बैठक गाँव के पुरुषों और मुखिया की भी हो सकती है। इसमें सभी को शराब पिलाई जाती है और अपना-अपना पक्ष रखा जाता है। बैठक काफ़ी देर तक चलती है और इसमें जो निर्णय निकलता है वह सबपर बाध्य माना जाता है। एक युवक ने कहा कि बैठक में सही निर्णय ही पाया जाता है क्योंकि वहाँ कोई भी ग़लत बात बोलकर सबके सामने बुरा नहीं बनना चाहता। अधिकांश किशोरों का कहना था कि जब बात बढ़ती है तो पुलिस के पास जाने से अच्छा यही है कि बैठक बुलाई जाए।

तीसरे पक्ष के पास जाने का विकल्प डाँटने के तरीक़ों को ज़्यादा बढ़ने से रोक देता है। जब बहस झगड़े में बदल जाती है तो अन्य लोग उसमें शामिल होकर उसे समाधान की दिशा में ले जाना शुरू कर देते हैं। यह यहाँ पर इसलिए सफल है क्योंकि पास-पड़ोस में जान-पहचान के और सगे सम्बन्धी लोग ही रहते हैं। इन सबका हमारी अपनी पहचान पर गहरा भावनात्मक असर रहता है। जब यहाँ के किशोर मज़दूरी के लिए बाहर निकलते हैं तो वहाँ पर उन्हें यह वातावरण नहीं मिलता।

विरोधों को पार करना — शैक्षणिक दिशाएँ

अगर यहाँ की यही संस्कृति और प्रथाएँ हैं तो फिर शिक्षा इसमें क्या जोड़ सकती है? समाज तो वैसे ही बच्चों और बड़ों को यह सब सिखा ही रहा है। क्या यह पर्याप्त है? विशेषज्ञों का मानना है कि विरोधों और मतभेदों को हल करने के अच्छे तरीक़े के लिए कई गुण ज़रूरी हैं। मिसाल के तौर पर, अपनी बात को स्पष्ट तरीक़े से रख पाना, उसे ऐसे कहना कि वह सुनी जाए, दूसरे पक्ष की बात को भी ध्यान से सुनना और दोनों के दावों पर नैतिक सिद्धान्तों के प्रयोग से चिन्तन करना और ऐसा हल निकालना जो कि दोनों पक्षों की नैतिकता को स्वीकृत हो। इस सबके लिए, दूसरे पक्ष के लिए दिल में सम्मान और स्नेह भी चाहिए, चाहे उनके साथ हमारी कोई रिश्तेदारी और मित्रता हो या न हो। यहाँ का अध्ययन जो तस्वीर सामने रख रहा है वह इससे थोड़ी भिन्न है। दूसरों को समझने और नैतिक सिद्धान्तों पर मनन करने का काम सामूहिक तौर पर हो रहा है और कई बार वह पुरुषों की बैठक में ही हो रहा है। व्यक्तिगत सोच और महिलाओं की समझ को इसमें महत्त्व नहीं दिया जा रहा। एक और समस्या है कि जिन नैतिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जा रहा है, वे सभी पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित हैं। एक जटिल, सर्वव्यापी औद्योगिक समाज में यह सिद्धान्त पर्याप्त नहीं

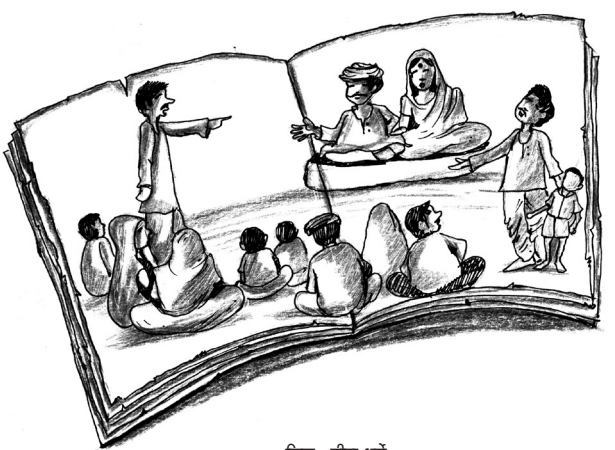

चित्र : हीरा धुर्वे

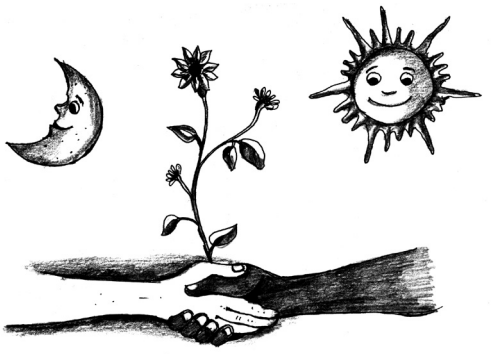

चित्र : हीरा धुर्वे

हैं। यहाँ के ग्रामीण युवक जहाँ जाकर काम कर रहे हैं, वे फ़ैक्ट्रियाँ, शहर और बाज़ार हैं। वहाँ पर इन्हें स्वयं ही सोचना पड़ेगा कि क्या सही है और क्या ग़लत। और विवाद के समय यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि उनके रिश्तेदार बात को सँभालने आ जाएँगे। ऐसी परिस्थितियों में वे विवश करने और पीछे हटने के तरीक़ों पर ज़्यादा भरोसा कर सकते हैं और नैतिक तार्किकता या संवाद में कमज़ोर रह सकते हैं। अपनी संस्कृति की अच्छाइयों के साथ-साथ इन्हें यह भी सीखने की आवश्यकता है कि एक ज़्यादा विस्तृत समाज में टकरावों को कैसे हल किया जा सकता है।

एक स्थानीय अध्ययन से हम पूरे भारत के युवकों के बारे में निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। मगर यह ज़रूर लग रहा है कि टकराव और विरोधों को विवेकपूर्ण और शान्तिमय तरीक़े से हल करने की संस्कृति को स्कूली शिक्षा में जगह देना फ़ायदेमन्द होगा। इसपर विश्व भर में कई तरह के प्रयोग हुए हैं और भारत में भी कई प्रगतिशील विद्यालयों ने अलग-अलग तरह से इसे अपनाया है। उदाहरण के लिए, बच्चों को दूसरों की बात और समस्या को ध्यान से सुनना सिखाया जाता है। उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि अपनी बात को बिना डाँटे या आक्रामक सुर का प्रयोग किए, कैसे प्रभावशाली तरीक़े से रखा जा सकता है। सर्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों में प्रतिबद्धता भी बनाई जा सकती है। इन सबको सामाजिक विज्ञान, साहित्य, कला, खेल-कूद और अन्य विषयों के द्वारा सिखाने में कई सम्भावनाएँ हैं।

भारतीय परम्पराओं में शान्ति की शिक्षा और दूसरों को प्रेम भाव से देखने पर बहुत काम है। यूनाइटेड नेशन्स और विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों ने भी इसपर सामग्री ऑनलाइन डाल रखी है जिसे 'conflict resolution education' के नाम से ढूँढ़ा जा सकता है। इस सामग्री को भारतीय परिवेश के अनुकूल बनाकर प्रयोग करने की सख़्त ज़रूरत है।

आगे आने वाला समय कैसा होगा, यह पूरी तरह से तो कोई नहीं कह सकता। मगर यह ज़रूर लग रहा है कि इसमें लोग पहले की तुलना में बहुत ज़्यादा संख्या में यहाँ से वहाँ जाएँगे और नए समूहों व जगहों के साथ रहना पड़ेगा। कई तरह के नए सामाजिक तनाव उपज रहे हैं। ऐसे वर्तमान और भविष्य के लिए अगर हमें बच्चों और युवकों को तैयार करना है तो उनके लिए यह सीखना लाभकारी होगा कि विवेकशील तरीक़े से अपने टकरावों और विरोधों के साथ कैसे निपटते हैं। कई पुराने तरीक़े अभी भी उतने ही उचित हैं जितने पहले थे। मगर बदलती परिस्थितियों के अनुकूल नए तरीक़ों को सीखना पड़ता है। उन्हें समझना और सिखा पाना, यही आज के स्कूली शिक्षण का धर्म है।

इस विषय पर अमन मदान, नवीन कुमार पासवान और नूपुर रस्तोगी का ज़्यादा विस्तृत विवरण देता हुआ लेख NUEPA द्वारा प्रकाशित पत्रिका *परिप्रेक्ष्य* में प्रकाशन के लिए भेजा हुआ है।

अमन मदान ने मानवशास्त्र और समाज शास्त्र का अध्ययन किया है। पिछले तीन दशकों से शिक्षा और समाज के मुद्दों पर अध्यापन एवं शोध के क्षेत्र में संलग्न हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : amman.madan@apu.edu.in